श्रीमद् भगवदगीता – दसवाँ अध्याय

अनुक्रम

दसवें अध्याय का माहात्म्य 1
दसवाँ अध्यायः विभूतियोग 4

दसवें अध्याय का माहात्म्य

भगवान शिव कहते हैं – सुन्दरी ! अब तुम दशम अध्याय के माहात्म्य की परम पावन कथा सुनो, जो स्वर्गरूपी दुर्ग में जाने के लिए सुन्दर सोपान और प्रभाव की चरम सीमा है। काशीपुरी में धीरबुद्धि नाम से विख्यात एक ब्राह्मण था, जो मुझमें प्रिय नन्दी के समान भक्ति रखता था। वह पावन कीर्ति के अर्जन में तत्पर रहने वाला, शान्तचित्त और हिंसा, कठोरता और दुःसाहस से दूर रहने वाला था। जितेन्द्रिय होने के कारण वह निवृत्तिमार्ग में स्थित रहता था। उसने वेदरूपी समुद्र का पार पा लिया था। वह सम्पूर्ण शास्त्रों के तात्पर्य का ज्ञाता था। उसका चित्त सदा मेरे ध्यान में संलग्न रहता था। वह मन को अन्तरात्मा में लगाकर सदा आत्मतत्त्व का साक्षात्कार किया करता था, अतः जब वह चलने लगता, तब मैं प्रेमवश उसके पीछे दौड़-दौड़कर उसे हाथ का सहारा देता रहता था।

यह देख मेरे पार्षद भृंगिरिटि ने पूछाः भगवन ! इस प्रकार भला, किसने आपका दर्शन किया होगा? इस महात्मा ने कौन-सा तप, होम अथवा जप किया है कि स्वयं आप ही पग-पग पर इसे हाथ का सहारा देते रहते हैं?

भृंगिरिटि का यह प्रश्न सुनकर मैंने इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया। एक समय की बात है – कैलास पर्वत के पार्श्वभागम में पुन्नाग वन के भीतर चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों से धुली हुई भूमि में एक वेदी का आश्रय लेकर मैं बैठा हुआ था। मेरे बैठने के क्षण भर बाद ही सहसा बड़े जोर की आँधी उठी वहाँ के वृक्षों की शाखाएँ नीचे-ऊपर होकर आपस में टकराने लगीं, कितनी ही टहनियाँ टूट-टूटकर बिखर गयीं। पर्वत की अविचल छाया भी हिलने लगी। इसके बाद वहाँ महान भयंकर शब्द हुआ, जिससे पर्वत की कन्दराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। तदनन्तर आकाश से कोई विशाल पक्षी उतरा, जिसकी कान्ति काले मेघ के समान थी। वह कज्जल की राशि, अन्धकार के समूह अथवा पंख कटे हुए काले पर्वत-सा जान पड़ता था। पैरों से पृथ्वी का सहारा लेकर उस पक्षी ने मुझे

प्रणाम किया और एक सुन्दर नवीन कमल मेरे चरणों में रखकर स्पष्ट वाणी में स्तुति करनी आरम्भ की।

पक्षी बोलाः देव ! आपकी जय हो। आप चिदानन्दमयी सुधा के सागर तथा जगत के पालक हैं। सदा सदभावना से युक्त और अनासक्ति की लहरों से उल्लसित हैं। आपके वैभव का कहीं अन्त नहीं है। आपकी जय हो। अद्वैतवासना से परिपूर्ण बुद्धि के द्वारा आप त्रिविध मलों से रहित हैं। आप जितेन्द्रिय भक्तों को अधीन अविद्यामय उपाधि से रहित, नित्यमुक्त, निराकार, निरामय, असीम, अहंकारशून्य, आवरणरहित और निर्गुण हैं। आपके भयंकर ललाटरूपी महासर्प की विषज्वाला से आपने कामदेव को भस्म किया। आपकी जय हो। आप प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से दूर होते हुए भी प्रामाण्यस्वरूप हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। चैतन्य के स्वामी तथा त्रिभुवनरूपधारी आपको प्रणाम है। मैं श्रेष्ठ योगियों द्वारा चुम्बित आपके उन चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जो अपार भव-पाप के समुद्र से पार उतरने में अदभुत शक्तिशाली हैं। महादेव ! साक्षात बृहस्पति भी आपकी स्तुति करने की धृष्टता नहीं कर सकते। सहस्र मुखोंवाले नागराज शेष में भी इतना चातुर्य नहीं है कि वे आपके गुणों का वर्णन कर सकें, फिर मेरे जैसे छोटी बुद्धिवाले पक्षी की तो बिसात ही क्या है?

उस पक्षी के द्वारा किये हुए इस स्तोत्र को सुनकर मैंने उससे पूछाः "विहंगम ! तुम कौन हो और कहाँ से आये हो? तुम्हारी आकृति तो हंस जैसी है, मगर रंग कौए का मिला है। तुम जिस प्रयोजन को लेकर यहाँ आये हो, उसे बताओ।"

पक्षी बोलाः देवेश ! मुझे ब्रह्मा जी का हंस जानिये। धूर्जटे ! जिस कर्म से मेरे शरीर में इस समय कालिमा आ गयी है, उसे सुनिये। प्रभो ! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, अतः आप से कोई भी बात छिपी नहीं है तथापि यदि आप पूछते हैं तो बतलाता हूँ। सौराष्ट्र (सूरत) नगर के पास एक सुन्दर सरोवर है, जिसमें कमल लहलहाते रहते हैं। उसी में से बालचन्द्रमा के टुकड़े जैसे श्वेत मृणालों के ग्रास लेकर मैं तीव्र गति से आकाश में उड़ रहा था। उड़ते-उड़ते सहसा वहाँ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब होश में आया और अपने गिरने का कोई कारण न देख सका तो मन ही मन सोचने लगाः 'अहो ! यह मुझ पर क्या आ पड़ा? आज मेरा पतन कैसे हो गया?' पके हुए कपूर के समान मेरे श्वेत शरीर में यह कालिमा कैसे आ गयी? इस प्रकार विस्मित होकर मैं अभी विचार ही कर रहा था कि उस पोखरे के कमलों में से मुझे ऐसी वाणी सुनाई दीः 'हंस ! उठो, मैं तुम्हारे गिरने और काले होने का कारण बताती हूँ।' तब मैं उठकर सरोवर के बीच गया और वहाँ पाँच कमलों से युक्त एक सुन्दर कमलिनी को देखा। उसको प्रणाम करके मैंने प्रदक्षिणा की और अपने पतन का कारण पूछा।

कमलिनी बोलीः कलहंस ! तुम आकाशमार्ग से मुझे लाँघकर गये हो, उसी पातक के परिणामवश तुम्हें पृथ्वी पर गिरना पड़ा है तथा उसी के कारण तुम्हारे शरीर में कालिमा दिखाई देती है। तुम्हें गिरा देख मेरे हृदय में दया भर आयी और जब मैं इस मध्यम कमल के द्वारा बोलने लगी हूँ, उस समय मेरे मुख से निकली हुई सुगन्ध को सूँघकर साठ हजार भँवरे स्वर्गलोक को प्राप्त हो गये हैं। पक्षिराज ! जिस कारण मुझमें इतना वैभव – ऐसा प्रभाव आया है, उसे बतलाती हूँ, सुनो। इस जन्म से पहले तीसरे जन्म में मैं इस पृथ्वी पर एक ब्राह्मण की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई थी। उस समय मेरा नाम सरोजवदना था। मैं गुरुजनों की सेवा करती हुई सदा एकमात्र पतिव्रत के पालन में तत्पर रहती थी। एक दिन की बात है, मैं एक मैना को पढ़ा रही थी। इससे पतिसेवा में कुछ विलम्ब हो गया। इससे पतिदेवता कुपित हो गये और उन्होंने शाप दियाः 'पापिनी ! तू मैना हो जा।' मरने के बाद यद्यपि मैं मैना ही हुई, तथापि पातिव्रत्य के प्रसाद से मुनियों के ही घर में मुझे आश्रय मिला। किसी मुनिकन्या ने मेरा पालन-पोषण किया। मैं जिनके घर में थी, वे ब्राह्मण प्रतिदिन विभूति योग के नाम से प्रसिद्ध गीता के दसवें अध्याय का पाठ करते थे और मैं उस पापहारी अध्याय को सुना करती थी। विहंगम ! काल आने पर मैं मैना का शरीर छोड़ कर दशम अध्याय के माहात्म्य से स्वर्ग लोक में अप्सरा हुई। मेरा नाम पद्मावती हुआ और मैं पद्मा की प्यारी सखी हो गयी।

एक दिन मैं विमान से आकाश में विचर रही थी। उस समय सुन्दर कमलों से सुशोभित इस रमणीय सरोवर पर मेरी दृष्टि पड़ी और इसमें उतर कर ज्यों हीं मैंने जलक्रीड़ा आरम्भ की, त्यों ही दुर्वासा मुनि आ धमके। उन्होंने वस्त्रहीन अवस्था में मुझे देख लिया। उनके भय से मैंने स्वयं ही कमलिनी का रूप धारण कर लिया। मेरे दोनों पैर दो कमल हुए। दोनों हाथ भी दो कमल हो गये और शेष अंगों के साथ मेरा मुख भी कमल का हो गया। इस प्रकार मैं पाँच कमलों से युक्त हुई। मुनिवर दुर्वासा ने मुझे देखा उनके नेत्र क्रोधाग्नि से जल रहे थे। वे बोलेः 'पापिनी ! तू इसी रूप में सौ वर्षों तक पड़ी रह।' यह शाप देकर वे क्षणभर में अन्तर्धान हो गये कमलिनी होने पर भी विभूतियोगाध्याय के माहात्म्य से मेरी वाणी लुप्त नहीं हुई है। मुझे लाँघने मात्र के अपराध से तुम पृथ्वी पर गिरे हो। पक्षीराज ! यहाँ खड़े हुए तुम्हारे सामने ही आज मेरे शाप की निवृत्ति हो रही है, क्योंकि आज सौ वर्ष पूरे हो गये। मेरे द्वारा गाये जाते हुए, उस उत्तम अध्याय को तुम भी सुन लो। उसके श्रवणमात्र से तुम भी आज मुक्त हो जाओगे।

यह कहकर पद्मिनी ने स्पष्ट तथा सुन्दर वाणी में दसवें अध्याय का पाठ किया और वह मुक्त हो गयी। उसे सुनने के बाद उसी के दिये हुए इस कमल को लाकर मैंने आपको अर्पण किया है।

इतनी कथा सुनाकर उस पक्षी ने अपना शरीर त्याग दिया। यह एक अदभुत-सी घटना हुई। वही पक्षी अब दसवें अध्याय के प्रभाव से ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है। जन्म से ही अभ्यास होने के कारण शैशवावस्था से ही इसके मुख से सदा गीता के दसवें अध्याय का उच्चारण हुआ करता है। दसवें अध्याय के अर्थ-चिन्तन का यह परिणाम हुआ है कि यह सब भूतों में स्थित शंख-चक्रधारी भगवान विष्णु का सदा ही दर्शन करता रहता है। इसकी स्नेहपूर्ण दृष्टि जब कभी किसी देहधारी क शरीर पर पड़ जाती है, तब वह चाहे शराबी और ब्रह्महत्यारा ही क्यों न हो, मुक्त हो जाता है तथा पूर्वजन्म में अभ्यास किये हुए दसवें अध्याय के माहात्म्य से इसको दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्राप्त हुआ तथा इसने जीवन्मुक्ति भी पा ली है। अतः जब यह रास्ता चलने लगता है तो मैं इसे हाथ का सहारा दिये रहता हूँ। भृंगिरिटी ! यह सब दसवें अध्याय की ही महामहिमा है।

पार्वती ! इस प्रकार मैंने भृंगिरिटि के सामने जो पापनाशक कथा कही थी, वही तुमसे भी कही है। नर हो या नारी, अथवा कोई भी क्यों न हो, इस दसवें अध्याय के श्रवण मात्र से उसे सब आश्रमों के पालन का फल प्राप्त होता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

(अनुक्रम)

दसवाँ अध्यायः विभूतियोग

सात से लेकर नौवें अध्याय तक विज्ञानसहित ज्ञान का जो वर्णन किया है वह बहुत गंभीर होने से फिर से उस विषय को स्पष्टरूप से समझाने के लिए इस अध्याय का अब आरम्भ करते हैं। यहाँ पर पहले श्लोक में भगवान पूर्वोक्त विषय का फिर से वर्णन करने की प्रतिज्ञा करते हैं-

।। अथ दशमोऽध्यायः ।।

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।।1।।

श्री भगवान बोलेः हे महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचन को सुन, जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखनेवाले के लिए हित की इच्छा से कहूँगा।(1)

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।

अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।।2।।

मेरी उत्पत्ति को अर्थात् लीला से प्रकट होने को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का भी आदिकरण हूँ।(2)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।3।।

जो मुझको अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित, अनादि और लोकों का महान ईश्वर, तत्त्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है।(3)

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।।4।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।।5।।

निश्चय करने की शक्ति, यथार्थ ज्ञान, असम्मूढता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियों का वश में करना, मन का निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति – ऐसे ये प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मुझसे ही होते हैं।(4,5)

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद् भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।।6।।

सात महर्षिजन, चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु – ये मुझमें भाव वाले सब के सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है।(6)

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।।7।।

जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूति को और योगशक्ति को तत्त्व से जानता है, वह निश्चल भक्तियोग से युक्त हो जाता है – इसमें कुछ भी संशय नहीं है।(7)

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।8।।

मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत चेष्टा करता है, इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त बुद्धिमान भक्तजन मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं।(8)

मच्चित्ता मद् गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।9।।

निरन्तर मुझ में मन लगाने वाले और मुझमे ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जानते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं, और मुझ वासुदेव मे ही निरन्तर रमण करते हैं।(9)

तेषां सततयुक्तानां भजतां – प्रीतीपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।10।।

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदि में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।(10)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।11।।

हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञान जनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ।(11)

अर्जुन उवाच
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।12।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।।13।।

अर्जुन बोलेः आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष और देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास भी कहते हैं और आप भी मेरे प्रति कहते हैं।(12,13)

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः।।14।।

हे केशव ! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस सबको मैं सत्य मानता हूँ। हे भगवान ! आपके लीलामय स्वरूप को न तो दानव जानते हैं और न देवता ही।(14)

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।।15।।

हे भूतों को उत्पन्न करने वाले ! हे भूतों के ईश्वर ! हे देवों के देव ! हे जगत के स्वामी! हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपने-से-अपने को जानते हैं।(15)

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।।16।।

इसलिए आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को सम्पूर्णता से कहने में समर्थ हैं, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।(16)

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।।17।।

हे योगेश्वर ! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और हे भगवन ! आप किन-किन भावों से मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं?(17)

विस्तेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।18।।

हे जनार्दन ! अपनी योगशक्ति को और विभूति को फिर भी विस्तारपूवर्क कहिए, क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती अर्थात् सुनने की उत्कण्ठा बनी ही रहती है।(18)

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।।19।।

श्री भगवान बोलेः हे कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं जो मेरी विभूतियाँ हैं, उनको तेरे लिए प्रधानता से कहूँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है।(19)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।।20।।

हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।(20)

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।।21।।

मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु और ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूँ तथा उनचास वायुदेवताओं का तेज और नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा हूँ।(21)

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।22।।

मैं वेदों में सामवेद हूँ, देवों में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और भूतप्राणियों की चेतना अर्थात् जीवन-शक्ति हूँ।(22)

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरूः शिखरिणामहम्।।23।।

मैं एकादश रूद्रों में शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ। मैं आठ वसुओं में अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतों में सुमेरू पर्वत हूँ।(23)

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।

सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।24।।

पुरोहितों में मुखिया बृहस्पति मुझको जान। हे पार्थ ! मैं सेनापतियों में स्कन्द और जलाशयों में समुद्र हूँ।(24)

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।।25।।

मैं महर्षियों में भृगु और शब्दों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ। सब प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत हूँ।(25)

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।।26।।

मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।(26)

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद् भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।27।।

घोड़ों में अमृत के साथ उत्पन्न होने वाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्यों में राजा मुझको जान।(27)

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणास्मि वासुकिः।।28।।

मैं शस्त्रों में वज्र और गौओं में कामधेनु हूँ। शास्त्रोक्त रीति से सन्तान की उत्पत्ति का हेतु कामदेव हूँ और सर्पों में सर्पराज वासुकि हूँ।(28)

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।।29।।

मैं नागों में शेषनाग और जलचरों का अधिपति वरुण देवता हूँ और पिंजरों में अर्यमा नामक पितर तथा शासन करने वालों में यमराज मैं हूँ।(29)

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।30।।

मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करने वालों का समय हूँ तथा पशुओं में मृगराज सिंह और पक्षियों में मैं गरुड़ हूँ।(30)

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी।।31।।

मैं पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में श्रीराम हूँ तथा मछलियों में मगर हूँ और नदियों में श्रीभागीरथी गंगाजी हूँ।(31)

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।।32।।

हे अर्जुन ! सृष्टियों का आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ। मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और परस्पर विवाद करने वालों का तत्त्व-निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूँ।(32)

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।33।।

मैं अक्षरों में अकार हूँ और समासों में द्वन्द्व नामक समास हूँ। अक्षयकाल अर्थात् काल का भी महाकाल तथा सब ओर मुखवाला, विराटस्वरूप, सबका धारण-पोषण करने वाला भी मैं ही हूँ।(33)

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद् भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।।34।।

मैं सबका नाश करने वाला मृत्यु और उत्पन्न होने वालों का उत्पत्ति हेतु हूँ तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।(34)

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।।35।।

तथा गायन करने योग्य श्रुतियों में मैं बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द हूँ तथा महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ।(36)

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।।36।।

मैं छल करने वालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ। मैं जीतने वालों का विजय हूँ, निश्चय करने वालों का निश्चय और सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ।(36)

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।37।।

वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तेरा सखा, पाण्डवों में धनंजय अर्थात् तू, मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूँ।(37)

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।।38।।

मैं दमन करने वालों का दण्ड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूँ, जीतने की इच्छावालों की नीति हूँ, गुप्त रखने योग्य भावों का रक्षक मौन हूँ और ज्ञानवानों का तत्त्वज्ञान मैं ही हूँ।(38)

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।।39।।

और हे अर्जुन ! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ, क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित हो।(39)

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।।40।।

हे परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, मैंने अपनी विभूतियों का यह विस्तार तो तेरे लिए एकदेश से अर्थात् संक्षेप से कहा है।(40)

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।41।।

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान(41)

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।42।।

अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योगशक्ति के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।(42)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः।।10।।

इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में 'विभूतियोग' नामक दसवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ